Afeem Sagar Hindi Upnyas by Amitav Ghosh



अमिताव घोष की उपन्यास-त्रयी में पहला उपन्यास सी ऑफ़ पॉपीज़ इतनी जीवंत, गहन एवं मानवीय संवेदनाओं से भरपूर है कि यह उनके एक महान कथाकार होने की पुष्टि करता है। इस महागाथा के केंद्र में एक विशाल जहाज़ आइबिस है। जिसकी नियति हिंद महासागर से मॉरीशस द्वीप की उथल-पुथल भरी यात्रा है। इसके यात्री हैं नाविक, भगोड़े, मज़दूर और क़ैदी। उन्नीसवीं सदी के मध्य के औपनिवेशिक काल में भारतीय और पश्चिमी मूल के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को नियति एक साथ ला खड़ा करती है, जिनमें एक कंगाल राजा से लेकर गांव की विधवा है तो गुलामी से मुक्त हुए मुलाटों अमेरिकी से लेकर एक स्वच्छंद यूरोपीय अनाथ लड़की भी है। हुगली से निकलकर जब वो समुद्र पर पहुंचते हैं तो पुराने पारिवारिक बंधन बह जाते हैं और वो एक-दूसरे को जहाज़-भाई की तरह देखने लगते हैं जिन्हें एक सुदूर द्वीप में नई ज़िंदगी की शुरुआत करनी है। यह शुरुआत है एक बिल्कुल अनोखे वंश की।

इस ऐतिहासिक रोमांचक उपन्यास का विस्तार अफ़ीम युद्धकाल में गंगा किनारे के अफ़ीम के खेतों से लेकर ठाठें मारते समुद्र और चीन की शानदार सड़कों तक फैला हुआ है। मगर सबसे ज़्यादा ख़ूबसूरत है पात्रों का व्यापक फलक, जिनका फैलाव पूर्व के औपनिवेशिक इतिहास को अपने में समेटे हुए है और जो सी ऑफ़ पॉपीज़ को बेहद जीवंत बना देते हैं–दुनिया के एक सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार का शाहकार।

एक. धरती -एक

जिस दिन दीती के मानस में समुद्र में बहती लंबे मस्तूल वाली कश्ती की आकृति कौंधी थी, वो एक साधारण सा दिन था, लेकिन वो फ़ौरन समझ गई थी कि ये आकृति उसके भाग्य का प्रतीक है क्योंकि उसने वैसी कश्ती पहले कभी नहीं देखी थी, सपने में भी नहीं: देख भी कैसे सकती थी, जबकि वो समुद्र तट से चार सौ मील दूर उत्तरी बिहार में रहती थी? उसके गांव से समुद्र तट का फ़ासला परलोक जितना था: उसे अंधेरे' की वो खाई माना जाता था जहां पवित्र गंगा काले पानी में जा मिलती है।

ये जाड़ों के लगभग अंत की बात थी। उस साल पोस्त ने अपने पत्ते झाड़ने में कुछ ज़्यादा ही देर लगा दी थी: बनारस के आगे मीलों तक गंगा दो ग्लेशियरों के बीच बहती महसूस होती थी, और इसके दोनों किनारे सफ़ेद पत्तियों वाले फूलों से ढके हुए थे। ऐसा लगता था जैसे होली के आगमन और बसंत ऋतु के रंगों के इंतज़ार में हिमालय की बर्फ नीचे उतर आई हो। दीती जिस गांव में रहती थी, वो बनारस से कोई पचास मील पर्व में गाजीपर शहर के वाहरी इलाके में था। अपने सारे पड़ोसियों की तरह, दीती भी पोस्त की फ़सल की देरी में उलझी हुई थी: उस दिन वो जल्दी उठी थी और अपने पति हुकम सिंह के लिए धुली हुई धोती और कमीज़ निकालने और दिन में उसके खाने के लिए रोटियों बनाने और अचार निकालने के अपने रोज़ाना के काम में लग गई थी। खाना बंध जाने के बाद, वो जल्दी से अपने पूजा के कमरे का भी एक चक्कर लगा आईं: नहाने-धोने और कपड़े बदलने के बाद दीती फूलों और चढ़ावे के साथ पूरी पूजा करने जाएगी; अभी चूंकि वो रात वाली साड़ी ही पहने हुए थी, इसलिए उसने बस दरवाज़े पर रुककर थोड़ा झुकते हुए हाथ जोड़ दिए थे।

जल्दी ही पहियों के चरमराने की आवाज़ ने उस बैलगाड़ी के आगमन का ऐलान कर दिया जो हुकम सिंह को तीन मील दूर गाज़ीपुर में उस फैक्टरी तक लेकर जाती थी जहां वो काम करता था। हालांकि फ़ासला बहुत ज़्यादा नहीं था, लेकिन हुकम सिंह के लिए इतना पैदल चल पाना मुश्किल था क्योंकि एक ब्रिटिश टुकड़ी में सिपाही की नौकरी करते हुए वो घायल हो गया था। बहरहाल, घाव इतना गंभीर नहीं था कि बैसाखियों की ज़रूरत पड़े, और हकम सिंह बिना किसी की मदद लिए बैलगाड़ी तक जा सकता था। दीती एक क़दम पीछे खाना और पानी लिए चल रही थी और जब हुकम सिंह बैलगाड़ी में चढ़ गया तो दीती ने कपड़े में लिपटा पैकेट उसे पकड़ा दिया।

बैलगाड़ी का चालक कलवा एक विशालकाय आदमी था, लेकिन उसने अपनी सवारी की मदद करने की कोई कोशिश नहीं की और ध्यान रखा कि अपना मुंह ढके रहे: वो चर्मकार जाति से था, और उच्च जाति का राजपूत होने के नाते हुकम सिंह का मानना था कि कलुवा की शक्ल देखना दिनभर के लिए अपशकुन होगा। बैलगाड़ी के पिछवाड़े चढ़ जाने के बाद इस भूतपूर्व सिपाही ने अपना चेहरा पीछे की तरफ़ ही रखा और अपने वंडल को गोद में संभाल लिया ताकि चालक की किसी चीज़ से सीधे संपर्क में न आए। ग़ाज़ीपुर तक बैलगाड़ी इसी तरह चरमराती आगे बढ़ती रहती थी, और ये चालक और यात्री इसी तरह बैठे रहते थे-मृदु भाव से बातें करते हुए, लेकिन बिना नज़रें मिलाए।

चालक की मौजूदगी में दीती भी ध्यान रखती थी कि अपना चेहरा ढके रहे: अपनी छह-वर्षीय बेटी कबूतरी को जगाने के लिए अंदर जाने के बाद ही उसने अपने चूंघट को सिर से खिसकने दिया। कबूतरी अपनी चटाई पर वल खाए लेटी थी, और उसके मुंह के तेज़ी से बदलते कोणों और मुस्कुराहटों से दीती समझ गई थी कि वो किसी सपने में खोई हुई है: उसको जगाते-जगाते उसने अपना हाथ रोक लिया और पीछे हट गई। अपनी बेटी के सोते हुए चेहरे में, उसे अपने नैन-नक्श दिखाई दे रहे थे वही भरे-भरे होंठ, गोल सी नाक और ऊपर को उठी ठोड़ी–अलावा इसके कि बच्ची के चेहरे के नक्शे एकदम स्पष्ट और तीखे थे जबकि उसके चेहरे के नक्शे धुंधलाए और अस्पष्ट से हो गए थे। सात साल की शादी के बाद दीती खुद भी अभी बच्ची ही थी, लेकिन उसके घने काले बालों में कुछ सफ़ेद तार झांकने लगे थे। धूप से सूखी और काली पड़ चुकी उसके चेहरे की त्वचा उसके मुंह और आंखों के किनारों पर फूलने और टूटने लगी थी। मगर उसके थके से चेहरे के साधारण होने के बावजूद,

एक चीज़ में वो साधारण से एकदम भिन्न थी: उसकी आंखें हल्के स्लेटी रंग की थीं जोकि देश के उस भाग में एक असाधारण बात थी। उसकी आंखों का रंग-या वेरंगपन-ऐसा था कि वो एक साथ अंधी भी लगती थी और सब कुछ देखने वाली भी। इसकी वजह से नौजवान उससे घबराते थे, और इसी वजह से उनकी चिढ़ और अंधविश्वास इस हद तक बढ़ गया था कि वो ताने देने के लिए कभी-कभी उसे चुडैलिया और डैनिया तक कहकर पुकारते थे: मगर दीती बस आंखें घुमाकर उन्हें देखती और वो भाग लेते थे। हालांकि दूसरों को तंग करने की अपनी इस शक्ति पर उसे किसी हद तक मज़ा आता था, पर उसे खुशी थी कि कम से कम उसकी बेटी की आंखें उस पर नहीं पड़ी हैं-उसे कबूतरी की काली आंखें देखकर खुशी होती थी, जो उसके चमकदार बालों जैसी ही काली थीं। अभी अपनी बेटी के सपना देखते चेहरे को देखकर दीती मुस्कुराई और उसने फैसला किया कि वो उसे नहीं जगाएगी: तीन-चार साल में तो शादी होकर उसे चले ही जाना है; पति के घर पहुंचकर उसके पास काम करने के लिए बहुत समय होगा; अपने घर पर बचे-खुचे इन वर्षों में वो आराम ही करे।

बड़ी मुश्किल से मुंहभर रोटी खाने जितना ठहरकर, वो घर से निकलकर कुटी हुई मिट्टी की उस समतल दहलीज़ पर चली गई जो उसके मिट्टी की दीवारों वाले घर को पोस्त के खेतों से अलग करती थी। अभी निकले सूरज की रोशनी में ये देखकर उसे शांति मिली कि आख़िरकार कुछ फूलों ने अपनी पत्तियों को झाड़ना शुरू कर दिया है। बग़ल वाले खेत में, उसका देवर चंदन सिंह आठ ब्लेडों वाला अपना नुक्खा लिए पहुंच चुका था। कुछ नंगी फलियों को वो अपने उपकरण के नन्हे-नन्हे दांतों से कुरेद रहा था अगर रातभर रस बहता रहा तो वो खेत की कुटाई के लिए कल अपने परिवार को बुला लेगा। एकदम सही समय का चयन करना ज़रूरी था क्योंकि पौधे के छोटे से जीवनकाल में वो वेशक़ीमत रस बहत कम समय निकलता था: सिर्फ एक-दिन, जिसके बाद फलियों की हैसियत खरपतबार से ज़्यादा नहीं रह जाती थी।

चंदन सिंह ने भी उसे देख लिया था और वो ऐसा आदमी नहीं था जो ख़ामोशी से किसी को निकल जाने दे। पांच बच्चों का बाप वो मुंहफट आदमी दीती को कम बच्चों का ताना देने का कोई मौक़ा चूकता नहीं था। " ?" अपने उपकरण की नोक से ताजा रस चाटते हुए वो चिल्लाया। “क्या हुआ? आज भी अकेली? ऐसे कब तक चलेगा? हाथ बटाने के लिए तुम्हें बेटा चाहिए। तुम बांझ तो नहीं न हो..."

चूंकि वो अपने देवर के तौर-तरीक़ों को जानती थी, इसलिए दीती को उसके तानों को नज़रअंदाज़ करने में कोई दिक्कत नहीं हुई: उसकी तरफ़ पीठ फेरकर वो बांस की चौड़ी सी टोकरी कमर पर टिकाए अपने खेत में बढ़ गई। फूलों की कतारों के बीच ज़मीन पर काग़ज़ी पत्तियों की क़ालीन सी बिछी थी, और वो उन्हें मुट्ठियों में उठाकर अपनी टोकरी में डालने लगी। एक-दो हफ़्ते पहले तक वो फूलों को न छेड़ने का ध्यान रखते हुए किनारे-किनारे चलती थी, मगर आज तो जैसे वो फुदक रही थी और अपनी लहराती साड़ी द्वारा पकती हुई फलियों से पत्तियों के ढेर गिरने का उसे ज़रा भी दुख नहीं था। जब टोकरी भर गई, तो उसने उन्हें घर के वाहर बने चूल्हे के पास लाकर डाल दिया जहां आमतौर से वो खाना बनाया करती थी। दहलीज के इस भाग पर आम के दो बड़े-बड़े पेड़ों की छाया थी, जिनमें नई कोपलें फूटनी शुरू हो गई थीं जो आगे चलकर बसंत की पहली कलियां बनने वाली थीं। धूप से छांव में आने पर दीती को सुकून महसूस हुआ, और उसने अपने चूल्हे के पास बैठकर हाथों में लकड़ी उठाई और कल रात के अंगारों में डाल दी, जिनमें से कुछ अभी भी राख के अंदर चमकते दिखाई दे रहे थे।

कबूतरी जाग चुकी थी, और जब वो दरवाजे पर आई तब उसकी मां उससे लाड़ करने के मूड में नहीं थी। इतनी देर से? वो चिल्लाई। “कहां थी? काम-काज ना होइ? कोई काम नहीं दिखाई देता है?"

दीती ने अपनी बेटी का पोस्त के पत्तों को इकट्ठा करके उनका ढेर बनाने का काम सौंपा और खुद आग जलाने और लोहे के एक भारी तबे को गर्म करने में जुट गई। जब तवा गर्म हो गया, तो उसने उस पर मुट्ठी-भर पत्तियाँ डालीं और हाथ में एक कपड़ा लेकर उन्हें दबाने लगी। भुनकर काली होने के साथ-साथ, पत्त्यिां एक दूसरे से चिपकने भी लगीं और एक-दो मिनट बाद ही वो गेहूँ के आटे की उन रोटियों जैसी दिखने लगी जो दीती ने दिन के खाने के लिए अपने पति को बांधकर दी थीं। पोस्त की पत्तियों के ये पत्तल वाकई 'रोटी' ही कहे जाते थे हालांकि इनका काम अपनी हमनाम से एकदम अलग था: उन्हें ग़ाज़ीपुर की सडर ओपियम फ़ैक्टरी को बेच दिया जाता था, जहां उन्हें मिट्टी के उन बर्तनों में अस्तर की तरह इस्तेमाल किया जाता था जिनमें अफ़ीम पैक की जाती थी। ।

इस बीच कबूतरी ने थोड़ा सा आटा गूंधकर कुछ असली रोटियां बेल ली थीं। आग बुझाने से पहले दीती ने जल्दी से उन्हें पका लिया: रोटियों को अलग रख दिया गया, बाद में उन्हें कल की बची सब्ज़ी-आलूपोस्त, यानी पोस्त के बीजों के घोल में पके आलू के साथ खाया जाएगा। अब उसका ध्यान एक बार फिर' अपने पूजाकक्ष की तरफ़ गया: चूंकि दोपहर की पूजा का समय क़रीब आ रहा था, इसलिए अब उसे नदी पर जाकर नहाना था। कबूतरी के और अपने बालों में पोस्त के बीजों का तेल लगाने के बाद, उसने अपनी अतिरिक्त साड़ी कंधे पर लपेटी और अपनी बेटी को साथ लेकर खेतों के पार पानी की तरफ़ चल दी।

गंगा के रेतीले किनारे पर जाकर पोस्त के खेत ख़त्म हो जाते थे, जहां से नदी तक ढलान सी थी। धूप की तपिश ने रेत को इतना गर्म कर दिया था कि उनके नंगे पैरों के तलवे जल रहे थे। दीती के झुके कंधों से मातृत्व की मर्यादा का बोझ अचानक उतर गया और वो अपनी बेटी के पीछे दौड़ने लगी, जो फुदकती हुई उससे आगे निकल गई थी। पानी के किनारे से एक-दो क़दम पहले उन्होंने चिल्लाकर नदी का आह्वान किया-जय गंगा मैया की...-ढेर सारी हवा फेफड़ों में भरी, और पानी में उतर गई।

बाहर निकली तो दोनों हंस रही थीं: ये साल का वो समय था जब शुरूआती स्पर्श के झटके के बाद, पानी की ताज़गी भरी ठंडक का अहसास होने लगता था। हालांकि तेज़ गर्मी अभी कई हफ़्ते दूर थी, लेकिन गंगा के बहाव में उतार आना शुरू हो गया था। पश्चिम में बनारस की दिशा में मुड़ते हुए, पवित्र नगरी के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप चुल्लू भर पानी गिराने के लिए दीती ने अपनी बेटी को ऊपर उठा लिया। बच्ची के हाथों से चढावे के पानी के साथ एक पत्ती भी बहती हुई गिर गई। उन्होंने पलटकर देखा कि नदी उसे बहाकर गाज़ीपुर के घाटों की तरफ़ ले गई। गाज़ीपुर की अफ़ीम फ़ैक्टरी की दीवारें आंशिक रूप से आम और कटहल के पेड़ों से ढकी हुई थीं लेकिन फैक्टरी पर लहराता ब्रिटिश झंडा हरियाली के ऊपर दिखाई देता था। और उस चर्च की मीनारें भी जिसमें फैक्टरी के अधिकारी पूजा करते थे। गंगा पर फैक्टरी के घाट पर, एक मस्तूल वाली एक पतली नाव देखी जा सकती थी, जिस पर इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी का ध्वज लहरा रहा था। ये नाव कंपनी की एक बाह्य उप-एजेंसी से चलान अफ़ीम की खेप लाई थी और कुलियों की एक लंबी कतार माल उतार रही थी।

"मां" कबूतरी ने सिर उठाकर अपनी मां को देखते हुए कहा, “ये नाव कहां जा रही है?"

कबूतरी के इस सवाल ने ही दीती के मानस को चौंकाया था: उसकी आंखों में अचानक दो मस्तूलों वाली एक विशाल कश्ती की आकृति उभर आई थी। मस्तूलों के साथ चमचमाते सफ़ेद बड़े-बड़े पाल बंधे हुए थे। कश्ती का अगला भाग सारस या बगुले जैसी चोंच वाले किसी जानवर की तरह दिखाई दे रहा था। पृष्ठभूमि में, अगले भाग के पास एक आदमी खड़ा था और हालांकि वो उसे साफ़ देख नहीं पाई थी, पर उसे एक स्पष्ट और अपरिचित उपस्थिति का अहसास हो रहा था।

दीती जानती थी किये दृश्य वास्तव में उसके सामने मौजूद नहीं था-जिस तरह फैक्टरी के नज़दीक बंधी नाव थी। उसने न तो कभी समुद्र देखा था, न ही वो कभी अपने ज़िले से बाहर गई थी, और न ही उसने कभी अपनी मातृभाषा 'भोजपुरी' के अलावा कोई भाषा बोली थी, लेकिन लेकिन पल भर को भी उसे इस बात में कोई शक नहीं था कि उस कश्ती का कहीं न कहीं अस्तित्व ज़रूर है और वो उसकी ओर बढ़ती आ रही है। इस विश्वास ने उसे डरा दिया, क्योंकि उसने कभी भी ऐसी कोई चीज नहीं देखी थी जो इस आकृति से ज़रा भी मिलती-जुलती हो, और उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ये किस प्रकार का शकुन हो सकता है।

कबूतरी जानती थी कि कुछ असाधारण घटित हुआ है, और उसने एक-दो मिनट ठहरकर पूछा: “माँ? तुम क्या देख रही हो? क्या देखा है तुमने?"

दीती के चेहरे पर भय का भाव था और उसने कांपती आवाज़ में कहा: "बेटी-मैंने एक जहाज़ देखा है-एक कश्ती।"

"तुम्हारा मतलब वहां खड़ी वो नाव?"

“नहीं, बेटी: वैसी कश्ती मैंने पहले कभी नहीं देखी। वो लंबी सी चोंच वाली किसी बड़ी चिड़िया जैसी थी, जिसके पाल चिड़िया के पंखों जैसे थे।"

नदी पर एक नज़र डालते हुए कबूतरी ने कहा: “तुमने जो देखा, मेरे लिए उसका चित्र बना सकती हो?"

दीती ने सिर हिलाकर हां कहा और वो किनारे पर वापस आ गई। उन्होंने जल्दी से कपड़े बदले और पूजाकक्ष के लिए घड़े में गंगाजल भर लिया। घर वापस आकर दीती ने दीया जलाया और कबूतरी को लेकर पूजाकक्ष में आ गई। दीवारों पर कालिख की वजह से कमरा अंधियारा था, और तेल और अगरबत्ती की तेज़ गंध से महक रहा था। अंदर एक छोटी सी वेदी थी, जिस पर शिवजी और भगवान गणेश की मूर्तियां थीं, और फ्रेमों में मां दुर्गा और श्रीकृष्ण के चित्र लगे हुए थे। लेकिन वो कमरा सिर्फ देवताओं का ही नहीं बल्कि दीती के निजी देवकल का भी मंदिर था, और वहां उसके परिवार और पूर्वजों की भी कई निशानियां मौजूद थी-जैसे उसके स्वर्गीय पिता की लकड़ी की खड़ाऊं, उसकी मां द्वारा उसके लिए छोड़ी हई रूद्राक्ष की माला, और उसके दादा-दादी की चिताओं से लिए गए उनके पैरों के धुधंले पड़ चुके निशान। वेदी के आसपास की दीवारों पर वो तस्वीरें थीं जो ख़ुद दीती ने पोस्त की पत्तियों की टिकलियों पर रेखाचित्रों के रूप में बनाई थीं: उन दो भाइयों और एक बहन की कोयले से बनी तस्वीरें जो बचपन में ही मर गए थे। कुछ जीवित संबंधियों के भी चित्र थे, लेकिन वो आम के पत्तों पर सिर्फ़ रेखाएं खींचकर बनाए गए थे-दीती का मानना था कि जो लोग अभी धरती छोड़कर नहीं गए हैं, उनके ज़्यादा वास्तविकतापूर्ण चित्र बनाने की कोशिश करना अपशकुन है। इसीलिए उसके प्रिय भाई केसरी सिंह का चित्र सिर्फ सिपाही की राइफल और ऊपर उठी मूंछों के लिए बनी रेखाओं द्वारा बनाया गया था।

पूजाकक्ष में आने के बाद, दीती ने आम का एक हरा पत्ता लिया, और अपनी उंगली को चमकते लाल सिंदूर के एक बर्तन में कुछेक बार डालकर, उसने पंखों जैसे दो त्रिकोण बना दिए, जो एक ऐसी घुमावदार आकृति के ऊपर लगे हुए थे जिसके सिरे पर एक घुमावदार चोंच सी थी। ये कोई उड़ती चिड़ियाँ भी हो सकती थीं लेकिन कबूतरी फ़ौरन पहचान गई कि ये क्या है-दो मस्तूलों वाली कश्ती जिसके पाल खुले हुए थे। वो हैरान थी कि उसकी मां ने ऐसा चित्र बनाया है जैसे वो किसी जीवित प्राणी का चित्र बना रही हो।

“तुम इसे पूजाकक्ष में रखोगी?" उसने पूछा।

“हाँ," दीती ने कहा।

बच्ची की समझ में नहीं आया कि कश्ती को परिवार के स्मारकों में क्यों स्थान दिया जा रहा है। “लेकिन क्यों?" उसने कहा।

"पता नहीं." दीती ने कहा. क्योंकि वो खद अपने पर्वाभास के विश्वास पर चकित थी: “बस मैं इतना जानती हूं कि इसे यहां होना चाहिए; और केवल कश्ती को ही नहीं, बल्कि उन सबको भी जो इसमें सवार हैं; उन्हें भी हमारे पूजाकक्ष की दीवारों पर होना चाहिए।"

"लेकिन वो हैं कौन?" हैरान बच्ची ने कहा।

"अभी मुझे नहीं मालूम," दीती ने उससे कहा। “लेकिन जब मैं उन्हें देखूँगी तो पहचान जाऊंगी।"